SUṢAMĀ : Multidisciplinary Research Journal ISSN: 3107-4529
(International Peer-Reviewed & Refereed Journal)
Vol. 1, Special Issue, (December) 2025

पुराणों में नारी की भूमिका और आदर्श रूप का प्रतिपादन

Venkatesh Mishra
Research Scholar, Dept. of Vaidic Darshan, SVDV
Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India
Email: vbmb1995@gmail.com

Abstract: भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में पुराण साहित्य एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, जो न केवल धार्मिक मान्यताओं और कृत्यों का आधार प्रस्तुत करता है, बल्कि समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक ढांचे को भी गहराई से प्रभावित करता है। 'पुराण' शब्द "पुरा अपि नवं भवति इति पुराणम्" इस व्युत्पत्ति-सूत्र से माना जाता है। अर्थात्— जो प्राचीन होकर भी नित नूतन अर्थ देने वाला हो, उसे पुराण कहते हैं। इस प्रकार 'पुराण' का शाब्दिक अर्थ होता है - "प्राचीन ग्रंथ" या "पुरातन ज्ञान"।

पुराणों में वर्णित कथाओं, उपदेशों और चरित्रों के माध्यम से भारतीय जीवन-मूल्यों का समग्र चित्रण मिलता है। इसी संदर्भ में नारी की भूमिका और उसके आदर्श रूप का प्रतिपादन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पुराणों में नारी को केवल एक सामाजिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि सृजन, संरक्षण और सांस्कृतिक निरंतरता की आधारशिला के रूप में चित्रित किया गया है। देवी स्वरूपों के माध्यम से नारी को शक्ति, करुणा, ज्ञान और समर्पण जैसी विविध गुणों का प्रतीक माना गया है। दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि देवियों के रूप में नारी का आदर्श रूप सम्पूर्ण समाज के लिए प्रेरणादायक है, जो यह दर्शाता है कि नारी शक्ति और संवेदना दोनों का समुच्चय है।

इसके अतिरिक्त पुराणों में पार्वती, सीता, गार्गी, अनुसूया, दमयंती जैसी पात्राएँ नारी के विविध रूपों और भूमिकाओं को प्रतिष्ठित करती हैं—कहीं वह आदर्श पत्नी के रूप में, कहीं तपस्विनी के रूप में, तो कहीं ज्ञान और धर्म के संरक्षण की प्रवर्तक के रूप में दिखाई देती है। ये पात्र न केवल नारी के आदर्श रूप को रेखांकित करती हैं, बल्कि समाज में उसके कर्तव्यों, अधिकारों और गरिमा को भी स्थापित करती हैं। इस प्रकार पुराण साहित्य नारी को उच्च स्थान प्रदान करते हुए उसके योगदान, त्याग, शक्ति और आदर्शों का व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। पुराणों में वर्णित नारी के ये विविध आयाम आज भी सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं।

Keywords: पुराणों में नारी-प्रतिष्ठा, शीलवती पुत्री की महत्ता, कन्या-प्राप्ति अनुष्ठान, वैदिक-पुराणिक नारी-दृष्टि, विवाह-परंपरा एवं सामाजिक मान्यताएँ, स्त्री की धार्मिक सहभागिता, नारी शक्ति एवं धर्मभूमिका

नारी का महत्व एवं स्थान—

पितृसत्तात्मक समाजों में कन्या- जन्म को अनेक बार अवांछनीय घटना के रूप में देखा गया—ऐसा सामान्य दृष्टिकोण प्रक्षेपित किया जाता है; परन्तु पुराणों के प्रमाण इस धारणा को सर्वथा सही नहीं ठहराते। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे कई अनुष्ठानों का उल्लेख मिलता है जिनका उद्देश्य श्रेष्ठ, सद्गुणों से युक्त शीलवती पुत्री की प्राप्ति सुनिश्चित करना था। भारतीय परम्परा में शील-सम्पन्न कन्या को दस पुत्रों के बराबर माना गया है। 'पुत्र' की पारिभाषिक व्याख्या—"पुत्रः नाम त्रायते पितरौ नरकात्" (जो माता-पिता को नरक से तार दे)—के आधार पर 'पुत्री' की भी समान भूमिका स्वीकार की गई है। अतः यह धारणा कि प्राचीन भारत में कन्या-वध अथवा भ्रूण-हत्या का व्यापक प्रचलन था, पुराणिक साक्ष्यों द्वारा समर्थित नहीं है। इस संदर्भ में बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित एक विशेष अनुष्ठान की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है, जिसमें गृहस्थ को विदुषी कन्या प्राप्ति हेतु विधि बताई गई है।[1] यद्यपि यह अनुष्ठान पुत्र-प्राप्ति के लिए किए जाने वाले पुंसवन जितना लोकप्रिय नहीं हुआ, फिर भी यह इस बात का प्रमाण है

कि शिक्षित एवं संस्कारित माता-पिता पुत्र के समान ही पुत्री की भी कामना करते थे।[2] संयुक्त निकाय (III.2,6) के आधार पर भी यह मत प्रकट किया गया है कि एक गुणवान एवं सदाचारी पुत्री, पुत्र से भी श्रेष्ठ हो सकती है।

पुराणों में भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उदाहरण मिलते हैं। मत्स्यपुराण में मद्र देश के राजा अश्वपति का वर्णन है, जिन्होंने देवी-उपासना तथा निरन्तर साधना के फलस्वरूप अपनी गुणवती पुत्री सावित्री को प्राप्त किया।[3] यह उल्लेख स्पष्ट करता है कि पुराणों में कन्या की प्रतिष्ठा, भूमिका और महत्ता को सम्मानजनक दृष्टि से स्वीकार किया गया है। शील-सम्पन्न पुत्री को पुत्र से भी श्रेष्ठ माना गया है। मत्स्य पुराण में वर्णन मिलता है कि जिस कन्या में शील का अभाव न हो, वह दस पुत्रों के समान मानी जाती है।[4] इसी प्रकार पद्म पुराण में भी यह मत प्रकट किया गया है कि शीलयुक्त पुत्री शुभ तथा दस पुत्रों के बराबर होती है।[5] विष्णुधर्म (उप)पुराण में शीलधना नामक एक कन्या का उल्लेख मिलता है, जिसका विवाह हैहय वंशी राजा कृतवीर्य से हुआ था। उसे अनन्त-व्रत के पालन के योग्य बताया गया है।[6] देवीभागवत पुराण में पुत्री-विक्रय (कन्या की बिक्री) की निन्दा की गई है तथा इसे सामाजिक अपराध के रूप में माना गया है।[7] परिवार पुत्र के समान ही पुत्री में भी समान रुचि और स्नेह रखता था। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (XVI. 12–13) के आधार पर यह उल्लेख मिलता है कि किसी यात्रा से लौटने पर पिता अपनी पुत्री के कल्याण के लिए भी उसी प्रकार मंत्रोच्चारण करता था, जिस प्रकार वह अपने पुत्र की मंगलकामना के लिए करता था।[8]

पुराणों के प्रमाण के रूप में हम लिङ्गपुराण से दो संदर्भ प्रस्तुत कर सकते हैं। इन्द्रद्युम्न नामक अवन्ति के राजा के प्रसंग में बताया गया है कि उन्होंने अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर उसके कल्याण के लिए सात ब्राह्मणों की पूजा की थी।[9] एक अन्य स्थान पर 'पुत्री' शब्द की व्याख्या भी 'पुत्र' शब्द के समान अर्थ में की गई है। वहाँ पुत्री को ऐसी कन्या बताया गया है जो अपने माता-पिता को 'पुत्' नामक नरक से उबारती है (रक्षा करती है)।[10]

पुराणों के प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि असामान्य जन्म वाली कन्याओं की भी समुचित देखभाल की जाती थी। ऐसी कन्याएँ सामान्यतः 'अयोनिजा' के नाम से प्रसिद्ध थीं, जैसे—वृन्दा,[11] कलावती,[12] पद्मिनी[13] आदि।

पुराण ग्रंथों में विभिन्न संदर्भों में कन्याओं के प्रकारों और उनकी श्रेणियों का भी उल्लेख मिलता है। उनकी आयु के अनुसार उन्हें भिन्न–भिन्न नामों से संबोधित किया गया है। उदाहरण के लिए, सात वर्ष की कन्या को 'गौरी',[14] नौ वर्ष की को 'नग्निका',[15] तथा अन्य आयुवर्ग की कन्याओं को रोहिणी,[16] कन्या,[17] वृषली[18] आदि नामों से पुकारा गया है।

विवाह और नारी—

महाभारत के कुछ प्रसंगों में, पुराणों में वर्णित स्वेच्छाचार अथवा अनियंत्रित सामाजिक और यौन संबंधों के संदर्भ में, कामुकता या अव्यवस्थित संबंधों के संकेत मिलते हैं, जिनका प्रभाव कलियुग में समाज की सुव्यवस्थित परंपरा पर प्रतिकूल पड़ा। पुराणों के अनुसार विवाह एक सामाजिक और धार्मिक दायित्व है,[19] जिसका मुख्य उद्देश्य संतानोत्पत्ति तथा वंश वृद्धि माना गया है।[20] इनमें वधू के चयन के नियमों का भी वर्णन मिलता है[21] और कन्याओं के अल्पायु में विवाह के कुछ कारणों की भी चर्चा की गई है, वहीं कुछ कन्याओं के आजीवन अविवाहित रहने के उदाहरण भी मिलते हैं।

पुराण-परंपरा सामान्यतः स्मृति-परंपरा से सहमत है कि विवाह के आठ प्रकार होते हैं, यद्यपि कुछ पुराणों में इनकी संख्या दस बताई गई है और कहीं-कहीं चार तक सीमित की गई है, जो संभवतः प्राचीन और अप्रचलित प्रथाओं की ओर संकेत करता है।[22] इसके अतिरिक्त, पुराणों में स्त्रियों के पुनर्विवाह की परिस्थितियों, अनुलोम और प्रतिलोम विवाह, सवर्ण, असगोत्र, असप्रवरा तथा असपिण्ड विवाह की अवधारणाओं का भी उल्लेख और मूल्यांकन किया गया है।[23] साथ ही, एकपत्नी प्रथा, बहुपत्नी प्रथा तथा बहुपुरुष विवाह के विषय में भी पुराणों की दृष्टि का विवेचन मिलता है।

पुराणों में विधवाओं की स्थिति प्रायः करुण और दयनीय रूप में चित्रित की गई है, जहाँ उनके जीवन पर अनेक सामाजिक प्रतिबंध लगाए जाने का उल्लेख मिलता है। उन्हें अशुभ मानने की मानसिकता, एकाकी जीवन, व्रत-नियमों और संयमित आचरण का पालन करने जैसी अपेक्षाएँ उनके प्रति समाज के कठोर दृष्टिकोण को दर्शाती हैं। फिर भी कुछ प्रसंगों में विधवाओं की नैतिक दृढता, त्याग और तपस्या को आदर्श रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।[24]

धार्मिक दृष्टि से नारी—

स्त्री को अपने पति के समान उच्च धार्मिक दर्जा प्राप्त होने का प्रावधान बताया गया है। इसके अंतर्गत स्त्रियों के उपनयन संस्कार की परंपरा के लुप्त होने के कारणों, तथा वेद-मंत्रों के बिना उनके द्वारा किए जाने वाले धार्मिक कर्मकाण्डों की स्थिति का विवेचन किया जाना आवश्यक है। साथ ही, उन विशेष परिस्थितियों का अध्ययन भी आवश्यक है जिनमें पत्नी को पति की अंत्येष्टि-क्रियाएँ सम्पन्न करने की अनुमति प्रदान की जाती थी।[25]

धार्मिक पर्वों एवं अनुष्ठानों में स्त्रियों की भूमिका, संतान-प्राप्ति हेतु उनके लिए निर्धारित व्रतों और कर्मकाण्डों की परंपरा, तथा पुराणों में प्रतिपादित 'पतिव्रता' स्त्री की धार्मिक प्रतिष्ठा का मूल्यांकन भी इस विषय का महत्वपूर्ण पक्ष है। कुछ परिस्थितियों में स्त्री से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह निरन्तर तप, संयम और व्रत के माध्यम से स्वयं को शुद्ध करे—यह भी समाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण का परिचायक है।[26] पुराण-ग्रंथों में वर्णित स्त्रियों के लिए निर्धारित विविध व्रतों और नियमों के सामाजिक पक्ष का भी अध्ययन किया जा सकता है।[27] वैदिक परंपरा में पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से यज्ञ, हवन और प्रार्थना करने की जो प्रथा थी, उसके अवशेष पुराणों में भी मिलते हैं। इस आधार पर यह तर्क दिया जा सकता है कि यद्यपि धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों पर कुछ सीमाएँ और प्रतिबंध थे,[28] तथापि आदर्श स्वरूप में पति और पत्नी को समान तथा दैवी उपासना में परस्पर आवश्यक सहभागी माना गया है।[29]

निष्कर्ष —

पुराण-साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा में नारी को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसे केवल एक गृहिणी या सहायिका के रूप में ही नहीं, बल्कि समाज, धर्म और परिवार की आधारशिला के रूप में देखा गया है। पुराणों में नारी को जननी, भगिनी, पत्नी, कन्या और साधिका जैसे विविध रूपों में प्रस्तुत किया गया है, जो उसके बहुआयामी व्यक्तित्व को प्रकट करता है। एक ओर जहाँ नारी को 'शक्ति', 'प्रकृति' और 'धर्म की रक्षिका' के रूप में ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है, वहीं उसे पतिव्रता, त्यागमयी और संयमशील रूप में आदर्श भी माना गया है। दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सीता, सावित्री, अनुसूया और पार्वती जैसी स्त्रियाँ नारी की शक्ति, बुद्धि, तप और धर्मनिष्ठा की प्रतीक हैं। इन प्रसंगों से यह स्पष्ट होता है कि नारी को न केवल सम्मान प्राप्त था, बल्कि वह

धर्म-पालन और समाज-निर्माण में पुरुष के समान सहभागी भी थी। हालाँकि, कुछ पुराणों में स्त्रियों पर व्रत, नियम और आचार-संबंधी बंधन भी आरोपित किए गए हैं। उपनयन संस्कार की समाप्ति, वैदिक मंत्रोच्चारण से वंचित किया जाना तथा सामाजिक मर्यादाओं में बाँधे जाने के कारण कहीं-कहीं उनकी धार्मिक स्वतंत्रता सीमित भी दिखाई देती है। फिर भी, यह स्वीकार करना होगा कि आदर्श रूप में पुराणों ने पति-पत्नी को समान और परस्पर पूरक माना है। संयुक्त यज्ञ, व्रत, उपासना और संतान-उत्पत्ति में दोनों की समान भागीदारी स्वीकार की गई है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पुराण-साहित्य में नारी की स्थिति सम्मानजनक, गौरवपूर्ण तथा आध्यात्मिक रूप से महत्त्वपूर्ण रही है। यद्यपि सामाजिक परिवर्तन और रूढ़ियों के कारण उसमें कुछ संकुचन भी आया, फिर भी मूलतः नारी को शक्ति, पवित्रता और धर्म की संवाहिका के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में नारी को आज भी 'देवी' और 'मातृ-शक्ति' के रूप में श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है।

Endnotes

1. अथ य इच्छेदुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै॥ - बृहदारण्यक उपनिषद ४.४.१८.
2. ए. एस. अल्तेकर, The Position of Women in Hindu Civilization, पृ. सं.- ४.
3. राजन्! भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा। तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम् ।। मत्स्य पुराण २०८.८.; राजन्भक्तोऽसि मे नित्यं प्राप्स्यसे तनयां शुभाम् ।।- विष्णुधर्मोत्तर पुराण २.३६.६.
4. दशपुत्रसमा कन्या या नस्याच्छील वर्जिता ।। मत्स्य पुराण १५४.१५७.
5. दशपुत्रसमा कन्या यापि स्याच्छीलवर्जिता। पदम् पुराण १.४३.१५४.
6. विष्णुधर्म पुराण - अध्यायाः ०३१-०४०.
7. देवीभागवतपुराणम् ९.३३.
8. ए. एस. अल्तेकर, The Position of Women in Hindu Civilization, पृ. सं.- ९
9. लिङ्ग पुराण २.३४
10. पुन्नाम्नो नरकात्त्राति इति पुत्रेत्विहोक्तितः।। वही. ५.३१
11. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४.८६.२१-२३.
12. वही ४.१७.११९-१२२.
13. स्कन्द पुराण २.१.३.२१-२४.
14. गौरी कन्या प्रधाना वै मध्यमा कन्यका मता ॥ वही. ७.२०५.८२-८४
15. सप्तवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु नग्निका ॥ वही. ७.२०५.८४.
16. रोहिणी तत्समा ज्ञेया अधमा च रजस्वला ॥ वही. ७.२०५. ८२.
17. दशवर्षा भवेत्कन्या। वही. ७.२०५.८३.
18. अश्राद्धेयमपांक्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥ वही. ७.२०५.८४.
19. सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया । समुद्वहेद्दात्येतत्सम्यगूढं महाफलम् ॥ विष्णु पुराण ३,१०.२६; अनुकूलाङ्गनायुक्तमभिषिञ्चेदिति श्रुतिः ॥ ब्रह्माण्ड पुराण ३.१४.१५
20. भार्या वोऽस्तु महाभागा ध्रुवं वंशविवर्धिनी ॥ विष्णु पुराण १.१५.८.
21. विष्णु पुराण ३.१०,११.; पद्मपुराण ६.२२३.

22. विष्णु पुराण ३.१०.; कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता । नारीपुरुषयोरेवमुद्वाहस्तु चतुर्विधः ॥ ब्रह्माण्ड पुराण ३,१५.४
23. भार्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तास्ते वसतयश्चिरम् ॥ स्कन्द पुराण ७.१.१६७.३६; मत्स्यपुराण ३०.१७-१८. विष्णुपुराण ४.४.१.
24. विष्णु पुराण ४.१३.८५.
25. कूर्म पुराण २.२३.
26. अग्नि पुराण २४७.३०.
27. भविष्य पुराण ४.९.१-५.
28. नारदपुराण १४.५८.; वही १४.५९-६०.
29. वायु पुराण ६७.५८.; ब्रह्माण्ड पुराण ३.५५.

Bibliography

- Agni Puranam. Edited by various scholars, Nag Publishers, 1985.
- Altekar, A. S. *The Position of Women in Hindu Civilization: From Prehistoric Times to the Present Day*. Motilal Banarsidass, 1956.
- Brahmanda Puranam. Edited by J.L. Shastri, Motilal Banarsidass, 1973.
- Brahmavaivarta Puranam. Edited by Vasudevshastri Abhyankar, Anandashrama Sanskrit Series, 1935.
- Brihadaranyaka Upanishad. *The Principal Upanishads*, translated and edited by S. Radhakrishnan, George Allen & Unwin Ltd, 1953.
- Devi Bhagavata Puranam. Translated by Swami Vijnanananda, Munshiram Manoharlal, 1998.
- Bhavishya Puranam. Nag Publishers, 1984.
- Kurma Puranam. Edited by A.S. Gupta, All-India Kashiraj Trust, 1972.
- Linga Puranam. Edited by J.L. Shastri, Motilal Banarsidass, 1973.
- Matsya Puranam. Edited by Nag Sharan Singh, Nag Publishers, 1983.
- Narada Puranam. Edited by G.V. Tagare, Motilal Banarsidass, 1980.
- Padma Puranam. Edited by M.C. Apte, Anandashrama Press, 1893.
- Skanda Puranam. Edited by G.V. Tagare, Motilal Banarsidass, 1950.
- Vayu Puranam. Edited by Rajendra Lal Mitra, Asiatic Society of Bengal, 1880.
- Vishnu Puranam. Translated by H.H. Wilson, Punthi Pustak, 1961.
- Vishnudharmottara Puranam. Edited by Priyabala Shah, Oriental Institute, 1958.

———